कविता और कविता शिक्षण

संजय रॉय *

कविता का नाम आते ही सबसे पहले दिमाग में अबुझ-सी छवि आ जाती है। कविता दरअसल महसूस करने की चीज़ है और इसका सीधा संबंध भावनाओं से है। जबकि अक्सर काव्य-पंक्तियों को रटने पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है न कि समझने पर। हमारी शिक्षण-पद्धति में कविता को छात्रों के लिए भारी भरकम बना दिया गया है। जबकि कविता को इसकी प्रकृति के अनुसार ही सीखा जा सकता है। इसमें शामिल होकर ही इसे समझा जा सकता है। इसके लिए सिर्फ स्कूल का एक पीरियड काफ़ी नहीं। इसके लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती है। यह एक लंबी प्रक्रिया है। छात्र इसमें रुचि लें इसके लिए बहुत ज़रूरी है कि इसे जीवन में संगीत की तरह शामिल किया जाए, बजाय इसे बोझिल बनाने के।

कविता बहुत ही कोमल चीज़ है। कविता जब बनती है; तो बनती है रोशनी, बनती है धरती, बनता है आकाश। कविता जब बनती है; तो बोलती है चिड़िया, खिलते हैं फूल और मोजरा जाता है आम का वह बूढ़ा पेड़ भी। इस तरह आदमी, आदमी बनता है, जब बनती है कविता। कह सकते हैं अपने समय, समाज, परिवेश और प्रकृति के बीच सचेत आवाजाही का नाम है कविता। इस प्रकार कोमलता के साथ चुपके-से दायित्वबोध घुस आता है कविता में और कविता व्यक्तिगत वस्तु से सामाजिक वस्तु में तब्दील हो जाती है।

कविता करना एक सृजनात्मक काम है। इसलिए वैयक्तिक काम भी है। चिंतन और चेतना इस वैयक्तिक काम के साथ मिलकर इसको बृहत्तर आशयों से जोड़ते हैं, एक दायित्वबोध के साथ इसके सामाजिक आधार का गठन करते हैं। कविता के व्यक्तिगत वस्तु से सामाजिक वस्तु में तब्दील होने की यात्रा में उसे एक सृजनात्मक प्रक्रिया से गुज़रना होता है।

* *शोध छात्र,* हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता, पश्चिम बंगाल

Chapter 11.indd 92 5/11/2017 3:08:43 PM

हर सृजन पीड़ादायक होता है। लेकिन, सृजनात्मक क्षणों की पीड़ा भी सुख का कारण बनती है। इसलिए कविता व्यक्ति (या पाठक) में एक बेचैनी बोने के साथ-साथ एक सुखद अनुभूति का एहसास भी करा जाती है।

कविता में शब्द और उसके अर्थ ही पर्याप्त नहीं होते। कविता उससे आगे की यात्रा होती है। एक भाव-जगत से शुरू होकर दूसरे भाव-जगत तक की यात्रा। शब्द और अर्थ तो साधन मात्र होते हैं। इसका यह अर्थ नहीं लगा लेना चाहिए कि कविता में शब्द और अर्थ का कोई महत्व होता ही नहीं। माध्यम बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। वही हमें अभीष्ट तक ले जाते हैं। हम कोई बहुत अच्छी पंक्ति पढ़कर उसके शब्द और अर्थ में नहीं बल्कि उसके अभिप्राय में खोये रहते हैं। शब्द और अर्थ अपना काम करने के बाद हमारे भीतर अपने अभिप्रायों में जीवित रह जाते हैं। उसकी एक गूँज लगातार बनी रहती है हमारे भीतर। यही कारण है कि कई बार कोई अच्छी काव्य-पंक्ति दोहराते हुए हू-ब-हू वही शब्द उसी क्रम में नहीं आ पाते और हम उससे मिलते-जुलते अन्य शब्दों और शब्द-क्रम के माध्यम से उसी प्रकार के अभिप्राय की अभिव्यक्ति करने की कोशिश करते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि शब्द और अर्थ अपने संकेतों, प्रतीकों और बिंबों में हमारे भीतर जीवित रह जाते हैं। कविता के ये तत्व कविता में अर्थ और अभिप्राय के बीच वाली जगह पर अपना काम करते हैं। कवि की सृजनात्मक क्षमता का उत्कर्ष इन्हीं तत्वों में देखने को मिलता है। इन्हीं के संतुलित समायोजन से अर्थ और अभिप्राय के बीच एक घनिष्ठ रिश्ता बनता है। यही रिश्ता व्यक्ति (या पाठक) को अर्थ से अभिप्राय की यात्रा पर ले जाता है।

कविता शब्दों और भावों की जुगलबंदी का नाम है। मनुष्य का भाव-जगत इतना जटिल और ग्रंथिल होता है कि वर्ण, अक्षर, शब्द, वाक्य और अर्थ से बनी हुई भाषा एक सीमा के बाद उन्हें व्यक्त करने में असमर्थ हो जाती है। मुझे लगता है कविता का सृजन भाषा में ठीक इसी बिंदु से आगे की यात्रा है। वास्तव में भाषा एक यांत्रिक, संयोजित साधन है अभिव्यक्ति का। जब कभी हमें भाषा में जीवन-स्पंदन धड़कता हुआ महसूस होने लगे, तब यह समझना चाहिए कि वहाँ कविता की एक ठोस संभावना उपस्थित है। कह सकते हैं कि भाषा जहाँ असमर्थ होने लगती है, कविता का सामर्थ्य वहीं से शुरू होता है। अतः कविता भाषा और अभिव्यक्ति की एक विकसित अवस्था का नाम है।

कविता का काम क्या है? यहाँ इस प्रश्न पर विचार करना ज़रूरी है।

कविता मूलतः भावबोध और अनुभूति जगत की चीज़ है। अतः इसका मुख्य काम हुआ भावबोध और अनुभूति का स्तर ऊँचा करना। कह सकते हैं सौंदर्यबोध का परिष्कार व उसका विकास ही कविता का मूल लक्ष्य है। यहाँ सौंदर्यबोध दो स्तरों पर है – एक कविता का सौंदर्यबोध और दूसरा व्यक्ति (या पाठक) का सौंदर्यबोध। पाठक का सौंदर्यबोध कविता के सौंदर्यबोध की अँगुली पकड़कर यात्रा करता है। यहाँ हम साफ़-साफ़ देख सकते हैं कि कविता अपने आप में साध्य नहीं, बल्कि व्यक्ति (या पाठक) के सौंदर्यबोध के परिष्कार व उसके विकास का साधन

है। एक परिष्कृत सौंदर्यबोध वाला व्यक्ति ही एक परिष्कृत सौंदर्यबोध वाले समाज का निर्माण कर सकता है। कविता एक सुनिश्चित दायित्वबोध के साथ यह काम करती है। यहीं कविता की सार्थकता और सामाजिकता, दोनों सिद्ध होते हैं।

कोई कविता कब हमें अच्छी लगती है? कोई कविता क्यों हमें अच्छी लगती है? आखिर क्यों जब हम कई कविताएँ पढ़ते हैं, तो सभी कविताएँ एक ही परिमाण में अच्छी नहीं लगतीं? आखिर क्यों सबसे अच्छी कविता कौन-सी है का जवाब हमारे पास होता है? आखिर क्यों सबसे अच्छी कविता के चुनाव में अलग-अलग व्यक्तियों का अलग-अलग मत होता है? आखिर क्यों एक कविता अलग-अलग व्यक्तियों को एक ही परिमाण में अच्छी नहीं लगती? आखिर क्यों कालांतर में किसी व्यक्ति को एक ऐसी कविता अच्छी लगने लगती है, जो बार-बार पढ़े जाने के बावजूद भी कभी अच्छी नहीं लगी? इन प्रश्नों पर गौर से विचार करें तो कविता से जुड़ी हुई कई गुत्थियाँ खुलती हैं।

कविता की अपनी एक दुनिया होती है, अपना एक भाव-जगत होता है। साथ ही व्यक्ति (या पाठक) की भी अपनी एक दुनिया व अपना एक भाव-जगत होता है। कविता पढ़ते हुए कविता के भाव-जगत व पाठक के भाव-जगत के बीच जितनी मात्रा में एकात्मकता स्थापित होती है, कविता उतनी ही मात्रा में पाठक को अच्छी लगती है अर्थात् कविता व पाठक के भाव-जगत के मेल के परिमाण पर निर्भर करता है कविता के प्रति पाठक की रुचि का परिमाण। जब हम कई कविताओं के बीच से एक सबसे अच्छी कविता चुनते हैं, तो हमें यह समझना चाहिए कि व्यक्ति (या पाठक) के भाव-जगत के बीच की एकात्मकता तुलनात्मक दृष्टि से सबसे अधिक रही है। जब व्यक्ति (या पाठक) में भिन्नता आती है, तो भाव-जगत भी भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इसलिए कविताओं और पाठकों के भाव-जगत की एकात्मकता की मात्रा भी भिन्न-भिन्न हो जाती है। यही कारण है कि अलग-अलग लोगों को अलग-अलग कविताएँ अच्छी लगती हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि एक ही व्यक्ति को कालातंर में वह कविता उतनी अच्छी नहीं लगती, जो पहले बहुत अच्छी लगा करती थी। इस बार उसी कवि की कोई ऐसी कविता अच्छी लगती है, जो बार-बार पढ़े जाने के बावजूद पहले कभी व्यक्ति (या पाठक) को छू नहीं पाई अथवा उतनी अच्छी नहीं लगी। परिस्थितियाँ और समय भी व्यक्ति (या पाठक) के भाव-जगत के गठन में निर्णायक होते हैं। समय और परिस्थितियों के बदलने पर व्यक्ति (या पाठक) का भाव-जगत भी बदलता है। ऐसे में जो कविता व्यक्ति (या पाठक) के भाव-जगत के साथ एकात्मकता स्थापित कर पाती है, वही अच्छी लगती है और प्रभावित भी करती है। कभी-कभी बहुत पहले की पढ़ी हुई और विस्मृत हो चुकी कोई कविता या काव्य-पंक्ति व्यक्ति (या पाठक) को अचानक याद आ जाती है। उसने पहले कभी व्यक्ति (या पाठक) को भले ही किसी भी रूप में प्रभावित न किया हो, परंतु अचानक उसके भीतर एक सामानधर्मा भाव-जगत पाकर वह बरबस ही स्मृति में तैर आती है और एक सुखद अनुभूति का एहसास कराती है। कालांतर में कविता और पाठक

के भाव-जगत की भिन्नता और एकात्मकता बदलती है इसलिए व्यक्ति (या पाठक) की कविता की पसंद भी बदलती है।

जब हम कविता-शिक्षण की बात करते हैं, तो हमें याद आता है – कुछ शब्दों का अर्थ, काव्य-पंक्तियों का सीधे-सीधे गद्य में कह दिया जाना, एक नोट और उसे हू-ब-हू रटने का दबाव। कविता-शिक्षण की इस प्रक्रिया में कविता की व्यक्तिगत वस्तु से सामाजिक वस्तु तक की यात्रा छूट जाती है। छात्र के अनुभूति जगत व सौंदर्यबोध को कहीं नहीं कुरेदती कविता। छात्र का भाव-जगत और कविता का भाव-जगत, दोनों कहीं मिलते ही नहीं। कविता का सौंदर्यबोध उन्हें आकर्षित ही नहीं कर पाता। कविता का सौंदर्यबोध उन्हें आनंदित ही नहीं कर पाता। वास्तव में कविता का सौंदर्यबोध संप्रेषित ही नहीं हो पाता कक्षा में। यही कारण है कि कविता-शिक्षण के दौरान कक्षा में छात्र अपने को उदासीन पाते हैं।

'कविता-शिक्षण' जितना तकनीकी पद है, यह प्रक्रिया दरअसल उतनी तकनीकी नहीं है। इस प्रक्रिया में छात्र में काव्य-संस्कार पैदा करना होता है। संस्कार न तो कुछ दिनों में पैदा होता है, न ही कोई पद्धति विशेष इसका वाहक हो सकती है। इसमें जितना धैर्य और संयम चाहिए, उतना ही परिश्रम और लगन भी।

काव्य-संस्कार के लिए जो चीज़ें ज़रूरी हैं, उनमें पहला है – काव्य-पाठ। यह सबसे महत्वपूर्ण और पहली शर्त है काव्य-संस्कार के विकास के लिए। यह ज़रूरी नहीं कि काव्य-पाठ के दौरान बांग्ला की तरह उतनी ही नाटकीयता का निर्वाह हो। मुझे लगता है काव्य-पाठ करते समय पाठ करने वाले को बस इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि एक-एक शब्द, एक-एक अनुभूति को जैसे वह खुद जी रहा हो। मुझे याद है कई बार काव्य-पाठ सुनते हुए मेरे रोंगटे खड़े हुए हैं। अतः शिक्षक के काव्य-पाठ से यह अनुभूति और गहराई अपेक्षित है।

पूरी कविता या काव्य पंक्तियों से बार-बार सामना होते रहने से भी धीरे-धीरे काव्य-संस्कार बनता है। अतः कविता पढ़ाते हुए ही नहीं, बल्कि छात्रों से विभिन्न विषयों पर बात करते हुए अथवा दूसरे विषयों की चर्चा के क्रम में भी काव्य पंक्तियों का उद्धरण देना चाहिए। इससे होगा यह कि कविताएँ छात्रों के भीतर धीरे-धीरे घुलने लगेंगी और कविताओं की व्याख्या के लिए उन्हें नए-नए तरीके भी मिलेंगे। उदाहरण के लिए, भवानी प्रसाद मिश्र का एक काव्यांश ले सकते हैं—

कुछ लिख के सो, कुछ पढ़ के सो
तू जिस जगह जागा सवेरे, उस जगह से बढ़के सो।

इन पंक्तियों में लिखना, पढ़ना, सोना, जागना आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। यहाँ यह प्रश्न उठता है, 'क्या इन शब्दों का जो अर्थ होता है, वही इस कविता का कथ्य है?' उत्तर साफ़ है, नहीं। यहाँ अर्थ के कई स्तर हैं। यहाँ अर्थ नए अभिप्राय गढ़ता हुआ दिखता है। यहाँ शब्दों के अर्थ और कविता का कथ्य, दोनों अलग-अलग हैं। पर दोनों कहीं-न-कहीं एक-दूसरे से जुड़ते हैं, तभी संप्रेषित भी होते हैं। यहाँ यह सोचना जरूरी है कि वे कौन-से तत्व हैं, जो शब्दों के अर्थ और कविता के कथ्य को जोड़ते

हैं। कविता में सांकेतिकता, प्रतिकात्मकता और बिंबात्मकता ऐसे कुछ तत्व हैं, जो दोनों को जोड़ते हैं। इन काव्य पंक्तियों में शब्द अपने अर्थ के स्तर से ऊपर उठकर पाठक की अनुभूति से जुड़ते हैं और देर तक पाठक के भीतर कुछ गूँजता रहता है। कह सकते हैं कि कविता में शब्द अपने अर्थ को नया अभिप्राय देते हैं। शायद इसीलिए नरेश सक्सेना कविता को 'शब्दों से अर्थों को मुक्त करने की कला' मानते हैं। (राजेश जोशी : स्वप्न और प्रतिरोध, संपा. – नीरज, पृ. सं. 71)

संगीत का संबंध लय से होता है और लय कविता का एक अनिवार्य तत्व है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि लयात्मक कविताएँ ही संगीतात्मक होती हैं। कविता की अपनी लय होती है। कविता का संगीत हमेशा उसकी लय में नहीं होता। कविता में शब्द और अर्थ भाव के साथ मिलकर एक सांगीतिक उन्मेष रचते हैं। जब कविता में संगीतात्मक लय और काव्यात्मक लय, दोनों एक साथ हों तो कविता बहुत प्रभावी सिद्ध होती है। उदाहरण के लिए, दो काव्यांश लिए जा सकते हैं –

क) न पकड़ से छूटता पुराना सामान
न पकड़ में आता छूटता वर्तमान
– कुँवर नारायण

ख) भूलता तो यह भी जा रहा हूँ
कि भूलता जा रहा हूँ मैं
– केदारनाथ सिंह

दोनों काव्यांशों में लय और संगीत को आसानी से पढ़ा जा सकता है और इनके साथ भावों के संगीतात्मक अविच्छिन्न संबंध को भी। शिक्षक से यह उम्मीद की जाती है कि वह कविता की इस सांगीतिक बुनावट का विश्लेषण भी करे अर्थात् उसे तोड़कर देखे भी और छात्रों के सामने उसे इस तरह संप्रेषित भी करे कि समग्रता कहीं भंग न हो और सांगीतिक बुनावट बनी रहे। विश्लेषणात्मक तरीके से अपनी बातें रखने के बावजूद छात्रों में समग्रता की अनुभूति रोपना शिक्षण का एक अनिवार्य गुण होना चाहिए।

मुझे लगता है संगीत भी व्यक्ति (या पाठक) में काव्य-संस्कार पैदा करने में सहायक हो सकता है। संगीत कला व काव्य कला में आंतरिक रूप में कोई विशेष फर्क नहीं है। दोनों अनुभूति जगत की चीज़ें हैं। बाह्य रूप से ये क्रमशः ध्वनि व शब्दों से जुड़े हुए हैं। ध्वनियों के माध्यम से एक अनुभूति-जगत से दूसरे अनुभूति-जगत के बीच की आवाजाही का नाम है संगीत, और कविता शब्दों के माध्यम से। जब दोनों एक साथ हों, तो इनके प्रभाव की हम सिर्फ कल्पना ही कर सकते हैं। हम अपने छुटपन में माँ, चाची, दादी के मुख से विभिन्न मांगलिक अवसरों के लिए गीत सुनते रहे हैं। सुनते रहे हैं रफ़ी, लता, किशोर आदि के गाने। ग़ज़लों की तो पूछिए ही मत। हमने ध्वनि के साथ-साथ शब्दों को भी बजते सुना है। आज सिर्फ ध्वनि बजती है, शब्द सिरे से नदारद हैं। अगर हैं भी तो अपनी अस्मिता को खोकर। ऐसे में चुने हुए गीतों और ग़ज़लों का प्रयोग भी उचित होगा। बच्चन के गीत, प्रसाद, महादेवी, निराला व दुष्यंत की गायी गई कविताओं व ग़ज़लों का प्रयोग भी काव्य-संस्कार के विकास में सहायक होगा। यह प्रक्रिया घर से ही शुरू होनी चाहिए।